मेरी शिक्षण यात्रा

एकता चौरे

मेरा नाम एकता चौरे है। मैं शासकीय जनजातीय बालक आश्रमशाला (अँग्रेज़ी माध्यम) होशंगाबाद में प्राथमिक शिक्षक के रूप में पदस्थ हूँ। हम तीन बहनें और एक भाई हैं। मेरी बड़ी दीदी पूर्ण रूप से दृष्टिहीन हैं और यूनियन बैंक, इन्दौर के क्षेत्रीय कार्यालय में सहायक शाखा प्रबन्धक के पद पर हैं। वही मेरी प्रेरणा स्रोत रहीं। मैं और मेरी छोटी बहन भी बचपन से आंशिक दृष्टिहीन हैं। हम तीनों बहनें ग्लूकोमा नामक नेत्र रोग से ग्रसित हैं। तीन पुत्रियों के दृष्टि-बाधित होने के बाद भी मेरे पिता श्री कैलाश कुमार चौरे ने कभी जीवन से हार नहीं मानी और हमें हमेशा संघर्ष करने की प्रेरणा दी। मेरे पिता जी मुझे बचपन से श्री सोहनलाल द्विवेदी जी द्वारा रचित कविता 'हारिए न हिम्मत' पढ़कर सुनाया करते थे जिससे मेरी साहित्य के प्रति रुचि और अधिक बढ़ गई और जीवन से संघर्ष करने की प्रेरणा भी मिली। इस कविता के कुछ अंश मैं लेख में आगे उद्धरित करती रहूँगी।

कक्षा दसवीं तक मैंने स्वयं की आँखों से शिक्षा प्राप्त की। मुझे कहाँ पता था कि उसके बाद पराई आँखें मेरी सफलता के लिए हकदार होंगी। कक्षा दसवीं की वार्षिक परीक्षा के दौरान, गणित के प्रथम प्रश्नपत्र की शुरुआत होने के पन्द्रह मिनट पहले ही, मेरी जिस आँख में थोड़ा-बहुत दिखता था, वह भी दुर्घटनावश मुझसे छिन गई। हालातों से लड़ते हुए, अपने मनोबल को सम्भाले मैंने कक्षा दसवीं प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। यहीं से मेरी संघर्ष भरी यात्रा शुरू हुई।

गणित विषय में मेरी विशेष रुचि थी, इसलिए मेरे शिक्षक के मना करने के बावजूद मैंने अपनी ज़िद से यह विषय चुना, और कक्षा बारहवीं गणित विषय के साथ उत्तीर्ण की। परन्तु किस्मत को कहाँ मंज़ूर था कि मैं इंजीनियर बन सकूँ।

देखा है जो सपना हमने,
उसको तो पूरा करना है
स्वयं बनाए पथ पर,
हमको आगे बढ़ना है।
मुश्किलों को आसान बना,
नई उम्मीदों के रंग भरना है
उज्जवल ज्ञान प्रकाश के बल पर,
फिर से हमें सम्भलना है।

आँखों की चोट और पूर्व आंशिक दृष्टि के परिणामस्वरूप अन्ततः मेरी आँखों की रोशनी ने कक्षा बारहवीं के बाद दम तोड़ दिया और मुझे अन्धकार के गर्त में ला खड़ा किया। मैंने जीवन में कुछ कर पाने की उम्मीद ही छोड़ दी थी। लेकिन कहते हैं ना, हर निराशा के पीछे आशा छुपी होती है। तो उसी आशा की किरण में मैंने अपनी उम्मीद नहीं खोई, और इन्दौर के दृष्टिबाधित विद्यालय में दाखिला ले लिया तथा वहाँ से ब्रेल लिपि सीखी जिससे कि मैं अपने कार्य और शैक्षणिक उद्देश्यों की पूर्ति कर सकूँ। साथ ही, वहीं से मुझे स्नातक की पढ़ाई पूरी करने की प्रेरणा मिली।

अँधियारों में दीपक बनकर,
स्वयं की ज्वाला से जलेंगे हम।
सूरज चाहे नहीं बनें पर,
खुद को रोशन करेंगे हम।

शिक्षक बनने की राह

अब मेरा वर्तमान उन दिनों की तरह नहीं था जब मैं सामान्य स्थिति में अपने कार्यों को आसानी-से कर सकती थी। मुझे हर दिन एक नई चुनौती का सामना करना पड़ता था। कॉलेज में विषय के परिवर्तन के साथ ही, जीवन में होने वाले परिवर्तनों के साथ भी मैंने चलना सीख लिया था। मुझे जब यह पता चला कि दृष्टिहीन व्यक्ति भी नौकरी कर सकते हैं, विशेष रूप से एक शिक्षक की नौकरी, तब मैंने शिक्षक पात्रता परीक्षा की तैयारी प्रारम्भ कर दी। मेरे बहुत सारे साथी दृष्टिबाधित शिक्षक के पदों पर कार्य कर रहे थे, उन्हीं से मुझे प्रेरणा मिली।

उन दिनों मैं बी.ए. द्वितीय वर्ष की पढ़ाई कर रही थी। तभी शिक्षक के पद की नियुक्ति निकली। उसके आवेदन के लिए मेरे पिता ने संविदा शाला शिक्षक वर्ग-3 की पूरी किताब को उस समय में चलने वाले टेप रिकॉर्डर की कैसेट्स में रिकॉर्ड किया। उन रिकॉर्डिंग को सुनकर मैं वस्तुनिष्ठ प्रश्न-उत्तर की तैयारी करने में जुट गई। वह परीक्षा मैंने एक सहायक लेखक की सहायता से उत्तीर्ण की।

मिलते नहीं सहज ही मोती
गहरे पानी में,
बढ़ता दुगना उत्साह
इसी हैरानी में।
मुट्ठी उसकी खाली
हर बार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की
हार नहीं होती।

मेरी सफलता ने मेरे परिवार और समाज में एक नवीन प्रभाती किरण जगा दी, मानो यह कोई नई रोशनी

की शुरुआत हो। मेरी दोनों बहनों के लिए नई उमंग, तरंग बनकर उनकी रगों में बहने लगी, कि हमारे जीवन में भी नया सवेरा होगा। उस समय इटारसी-होशंगाबाद क्षेत्र के हमारे परिचित जनों में किसी भी दृष्टिबाधित की नौकरी का प्रस्ताव नहीं आया था। कई परिजन आश्चर्यचकित रह गए। कुछ कहने लगे कि "शिक्षक बनना आसान काम नहीं है", तो कुछ कहते कि "यह क्या पढ़ाएगी। यह कैसे पढ़ाएगी।" पर कहते हैं न कि मेहनत इतनी खामोशी से करो कि सफलता शोर मचा दे। शायद इसी वजह से आज मेरे समाज और पिछड़ी मानसिकता वाले लोगों ने चुप्पी साध ली है।

पिछड़ी मानसिकता और सामाजिक कुरीतियाँ
हमें स्वीकार नहीं,
क्योंकि ज्ञान रूपी चक्षु में
उत्पन्न कोई विकार नहीं।

पहली नौकरी के संघर्ष

भगवान के आशीर्वाद और माता-पिता के अथक प्रयासों से मुझे यह सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ। मेरी नियुक्ति भोपाल ज़िले की बैरसिया तहसील के अन्तर्गत 'रुनाहा' नामक गाँव की एक प्राथमिक शाला में हुई। कहते हैं न ठोकर खाकर ही ठाकुर बनते हैं; शायद भगवान ने जीवन में कई ठोकरें लिखी हुई हैं। वहाँ जाकर मुझे ऐसा लगने लगा कि शायद मैं यह नौकरी कर पाने में असमर्थ रहूँगी, क्योंकि वह गाँव इतना पिछड़ा हुआ था कि वहाँ न तो बिजली आती थी, न ही पानी की कोई सुरक्षित व्यवस्था थी। यह सब पता चलने पर हमारे पिता जी बहुत निराश हो गए, और उन्होंने बैरसिया कार्यपालन अधिकारी से कहा कि ऐसी परिस्थिति में उनकी बेटी नौकरी नहीं कर सकेगी। तब उन पिता-रूपी अधिकारी ने मुझे समझाया, "आप चाहें तो दो दिन बाद ही नौकरी से इस्तीफा दे सकती हैं। लेकिन पहले से मना न करें।" क्षण भर में मेरी ज़िन्दगी का

फैसला मेरे हाथ में था। परन्तु मैं कुछ कर पाने में असमर्थ थी। यदि मेरी माँ मेरा साथ न देती तो शायद आज मैं शिक्षक के पद पर न होती। मेरी माँ अपना सारा घर-परिवार छोड़कर मेरे साथ उस गाँव में रहने के लिए तैयार हो गई। क्योंकि घर से गाँव बहुत दूर था इसलिए उस गाँव में रहकर ही नौकरी किया जाना सम्भव था। इस प्रकार मेरे शिक्षक होने की यात्रा शुरू हो गई।

एक अजूबा शिक्षक

जैसे ही मैंने स्कूल में प्रवेश किया, सभी को ऐसा प्रतीत होने लगा कि कोई अजूबा-सा आ गया हो। सभी शिक्षक एवं विद्यार्थी खड़े होकर मुझे देखने लगे। उनके मन में प्रश्नों की असंख्य लहरें उठ रही थीं। परन्तु वे सभी उस समय चुप थे और मेरे कार्य को देखने के लिए बहुत उत्सुक थे। मुझे इन असहज परिस्थितियों का सामना तो करना ही था, और मैं पूरी तरह तैयार भी थी। हर जगह हर परिस्थिति से लड़ने से मुझे नई दिशा मिल रही थी। शिक्षकों के साथ सामान्य चर्चा के पश्चात मैंने कक्षा चौथी को पढ़ाने का आग्रह किया, और उन्होंने मेरा आग्रह स्वीकार कर लिया।

अक्सर जब मैं कक्षा चौथी को पढ़ाया करती थी, तो बच्चों के पालक और साथी-शिक्षक बाहर से खड़े होकर देखते थे, कि मैडम किस प्रकार पढ़ाती हैं। कई बार तो ऐसा हुआ कि मेरे पढ़ाते समय कई छात्र कक्षा से भाग जाया करते थे। उन्हें लगता था कि मैडम को पता नहीं चलेगा। लेकिन मैं उन्हें यह सोचकर छोड़ देती थी कि बालक यदि शैतानी नहीं करेंगे तो कौन करेगा। लेकिन जब उन्होंने मेरे पढ़ाए हुए बच्चों को देखा कि वे बहुत कुछ सीखने लगे हैं, तो अपने-आप कक्षा में बच्चों की संख्या बढ़ने लगी। सब को लगा कि यह मैडम हमारे स्कूल में सचमुच पढ़ाने का कार्य करने आई हैं। गाँव के उन सभी लोगों का मत गलत साबित हुआ जो यह सोचा करते थे कि यह क्या पढ़ाएगी। बाद में सभी लोग मान गए कि मैडम भी पढ़ा सकती हैं और हमारे बच्चों का भविष्य बना सकती हैं। जो पहले मुझसे बात तक नहीं करते थे, वे पालक भी मेरे पास आकर बैठने लगे और अक्सर मुझसे कहते, "मैडम, आप जब से आई हैं, हमारे बच्चे हिन्दी भी पढ़ने लगे और अँग्रेज़ी भी बोलने लगे।"

एकता की परीक्षा

लगभग 6 वर्षों तक मैं रुनाहा में कार्य करती रही। दिन में स्कूल में बच्चों को पढ़ाती और रात में मेरी माँ मुझे किताबें पढ़कर सुनाया करती थी। इस तरह मैंने हिन्दी में बी.ए. और एम.ए. किया। लेकिन एक कुण्ठा मेरे मन में हमेशा बनी रही। वो यह कि मैंने मेरे छोटे भाई को चार वर्ष की उम्र में ही अपनी माँ से अलग

करने का पाप किया था। माँ ने मेरे लिए उसको भी छोड़ दिया। मेरे घर में स्थिति बिगड़ने लगी। मेरे नाम का उलटा ही अर्थ निकलने लगा – 'एकता' जो कि सभी को एक सूत्र में बाँधती है, पर यहाँ तो मेरा परिवार बिखरने लगा। यह मैं नहीं देख सकती थी। मैं स्थानान्तरण करवाने की कोशिश करने लगी और सन 2015 में मेरा स्थानान्तरण आदिम जाति कल्याण विभाग के अन्तर्गत जनजातीय बालक आश्रम शाला (अँग्रेज़ी माध्यम), होशंगाबाद में हो गया।

एक नई शुरुआत

होशंगाबाद आकर मुझे ऐसा महसूस होने लगा कि जैसे मैंने खुले आसमान के नीचे साँस लेना शुरू कर दिया हो। यहाँ का वातावरण उस ग्रामीण अंचल के वातावरण से बहुत भिन्न था। वहाँ की वायु भले ही सुगन्धित, शुद्ध और स्वच्छ थी, लेकिन शहरी माहौल में रहने वाली मैंने ये छह साल बड़ी ही कठिनाई से गुज़ारे। होशंगाबाद में आदिवासी विकास विभाग के स्कूल में आने पर मुझे बहुत ही सुशिक्षित और सहयोगी शिक्षक साथियों का साथ मिला। अब तक मैंने जो विभिन्न तकनीकों के साथ शिक्षण कार्य किया था, उसमें धीरे-धीरे समय के साथ बहुत निखार आने लगा। शिक्षक की भूमिका, एक शिक्षक की कार्यशीलता और बालकों को पढ़ाने के प्रति उनकी कार्यक्षमता और लगन को देखकर मुझे भी बच्चों को पढ़ाने में मज़ा आने लगा।

यहाँ मुझे जो सुकून मिल रहा था, वैसा पहले कभी नहीं मिला। बच्चों के साथ रहकर मैं भी बच्चों की तरह ही व्यवहार करने लगी। मुझे बच्चों के साथ खेल-खेल में सीखना और सिखाना बहुत अच्छा लगा। यहाँ पर मुझे नए शिक्षक साथियों का बहुत सहयोग मिला। मैंने स्टाफ के साथ विभिन्न प्रकार की शैक्षणिक गतिविधियों में भाग लिया और तकनीकी संसाधनों का शिक्षा में प्रयोग किया। स्टाफ की मदद से मुझे वे सभी सुविधाएँ मिलीं जो ग्रामीण अंचल में नहीं मिल पाईं। बच्चों के प्रति मेरी पढ़ाने की लगन देखकर मेरे प्रधान पाठक ने मुझे ब्रेल की किताबें ला दीं। उन्हीं से मिली प्रेरणा से मैंने दोबारा अँग्रेज़ी विषय से एम.ए. किया और साथ ही शास्त्रीय संगीत सीखना भी प्रारम्भ किया। मैंने दृष्टिबाधितों के हितार्थ विशेष शिक्षा में बी.एड. की डिग्री प्राप्त की।

खुली आँखों से अब तक जो भी दिखा,
बन्द आँखों के पर्दे पर झिलमिलाने लगा।
एहसास और अनुभवों की रोशनी में,
नई मंज़िल का पथ जगमगाने लगा।

मैंने अपनी आँखों से जो भी पढ़ा था वह सब-कुछ बोर्ड पर लिखकर बच्चों को पढ़ाती हूँ। मैंने थोड़ा-बहुत

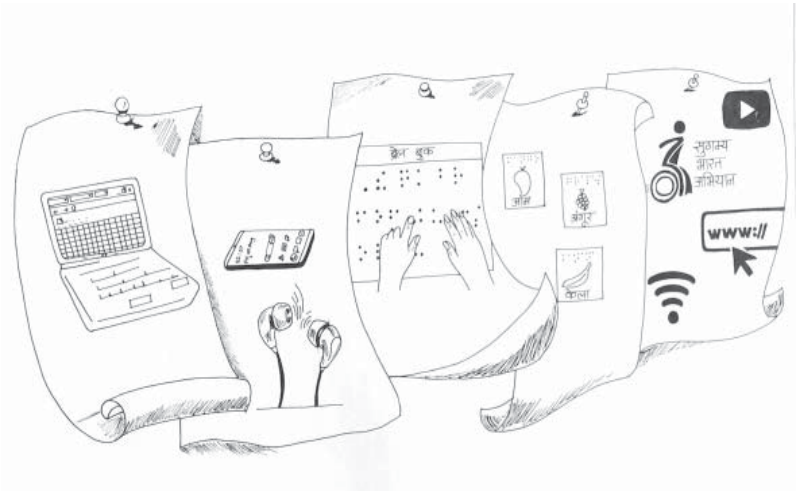

कम्प्यूटर चलाना भी सीखा था, सो वह भी चला सकती हूँ। मैं ब्रेल बुक्स, मोबाइल, इंटरनेट सुगम्य पुस्तकालय, यूट्यूब, वेब लिंक्स, विज़ुअल और नॉन-विज़ुअल टी.एल.एम. की सहायता से गतिविधियों के द्वारा बच्चों को पढ़ाती हूँ। मैं अपनी आँखों से कुछ देख तो नहीं सकती, मगर बच्चों की आँखों से देखकर ही मुझे सुकून मिल जाता है।

मैं मुझे बनाने वाले उस भगवान को धन्यवाद देती हूँ जिसने मेरी आँखों की रोशनी चले जाने पर भी हर जगह मेरी मदद के लिए दो आँखें भेज दीं।

तन के हिस्से में सिर्फ दो आँखें हैं,
मन की आँखें हज़ार होती हैं।
तन की आँखें तो सो भी जाती हैं,
मन की आँखें कभी न सोती हैं।
चाँद सूरज के जो हों खुद मोहताज,
भीख माँगो न उन उजालों की।
बन्द आँखों से ऐसे काम करो,
कि आँख खुल जाए आँखों वालों की।
हैं अँधेरे बहुत सितारे बनो,
डूबतों के लिए किनारे बनो।
हैं ज़माने में बेसहारा बहुत,
तुम सहारे न लो, सहारे बनो।

एकता चौरे: प्राथमिक शिक्षक, शासकीय जनजातीय बालक आश्रम शाला, होशंगाबाद। अँग्रेज़ी एवं हिन्दी में एम.ए.। बी.एड. स्पेशल।

सभी चित्र: शलाका गायकवाड: *एकलव्य* के आश्रमशाला विज्ञान प्रोजेक्ट, महाराष्ट्र में काम करने के बाद अब होशंगाबाद ज़िले के बाबई ब्लॉक में भाषा, गणित, विज्ञान और डिजिटल माध्यम से सीखने-सिखाने की प्रक्रिया पर काम कर रही हैं। बच्चों के साथ वक्त बिताना और उनसे जुड़े अनुभव लिखना पसन्द है। चित्रकारी और फोटोग्राफी में दिलचस्पी।